

तच्छ्रुत्वा मानसे तुष्टो भूत्वासौ प्रकटः सुरः। प्रोक्त्वा सर्वं तमभ्यर्च्य त्रिखण्डेशं दिवं गतः ॥११॥

एवं सुभयैर्जिनभक्तियुक्तैस्त्यक्त्वात्र दोषान्परलोकजातान्।

नित्यं तु साधुप्रगुणो हि भक्त्या ग्राह्यो गुणज्ञैर्वरशर्मसिद्धयै ॥१२॥

इति कथाकोशे परगुणग्रहणाख्यानं समाप्तम्।

१००. दुर्लभमानवपर्यायदृष्टान्ताः

विशुद्धं केवलज्ञानं नत्वा श्रीमज्जिनेश्वरम्। दृष्टान्तैर्दशभिर्विचित्रं मनुष्यत्वं सुदुर्लभम् ॥१॥

यथा—

चोल्लय पासय धणं जूवा रदणाणि सुमिण चक्कं वा। कुम्मं जुग परमाणु दस दिट्ठंता मणुयलभे ॥

पूर्वं चोल्लकदृष्टान्तं शृण्वन्तु सुधियो जनाः। श्रीमन्नेमिजिनाधीशे मुक्तिप्राप्ते जगद्धिते ॥२॥

विनीतविषयेऽयोध्यां नगर्यां ब्रह्मदत्तवाक्। षट्खण्डाधिपतिर्जाताश्चक्रिणामन्तिमो महान् ॥३॥

सहस्रभटनामाभूत्तत्सामन्तो गुणोज्ज्वलः। तस्य कान्ता सुमित्राख्या वसुदेवस्तयोः सुतः ॥४॥

मृते तस्मिन्सहस्रादिभटे सामन्तके ततः। वसुदेवः सुतः सोपि मूर्खः सेवादिकर्मसु ॥५॥

इतनी उदार बुद्धि देखकर वह देव बहुत खुश हुआ। उसने फिर प्रत्यक्ष होकर सब हाल श्रीकृष्ण से कहा—और उचित आदर मान करके आप अपने स्थान चला गया ॥२-११॥

इसी तरह अन्य जिन भगवान् के भक्त भव्यजनों को भी उचित है कि वे दूसरों के दोषों को छोड़कर सुख की प्राप्ति के लिए प्रेम के साथ उनके गुणों को ग्रहण करने का यत्न करें। इसी से वे गुणज्ञ और प्रशंसा के पात्र कहे जा सकेंगे ॥१२॥

१००. मनुष्य-जन्म की दुर्लभता के दस दृष्टान्त

अतिशय निर्मल केवलज्ञान के धारक जिनेन्द्र भगवान् को नमस्कार कर मनुष्य जन्म का मिलना कितना कठिन है, इस बात को दस दृष्टान्तों—उदाहरणों द्वारा खुलासा समझाया जाता है ॥१॥

१. चोल्लक, २. पासा, ३. धान्य, ४. जुआ, ५. रत्न, ६. स्वप्न, ७. चक्र, ८. कछुआ, ९. युग और १०. परमाणु।

अब पहले ही चोल्लक दृष्टान्त लिखा जाता है, उसे आप ध्यान से सुनें।

१. चोल्लक

संसार के हितकर्ता नेमिनाथ भगवान् को निर्वाण गए बाद अयोध्या में ब्रह्मदत्त बारहवें चक्रवर्ती हुए। उनके एक वीर सामन्त का नाम सहस्रभट था। सहस्रभट की स्त्री सुमित्रा के सन्तान में एक लड़का था। उसका नाम वसुदेव था। वसुदेव न तो कुछ पढ़ा-लिखा था और न राज-सेवा वगैरह की उसमें योग्यता थी। इसलिए अपने पिता की मृत्यु के बाद उनकी जगह इसे न मिल सकी, जो कि एक अच्छी प्रतिष्ठित जगह थी और यह सच है कि बिना कुछ योग्यता प्राप्त किए राज-सेवा

प्राप्तो नैव पितुः स्थानं निधानं भूरिसम्पदाम्। विना सेवादिभिः कस्मान्प्राप्यते राजमानिता ॥६॥
 तदा सुमित्रया सोपि स्थित्वा जीर्णं कुटीरके। जनन्या पोषितो यत्नाद्वसुदेवो निजाशया ॥७॥
 कट्यां बध्वा शुभं भारं ताम्बूलादिकमोदकम्। शीघ्रं च गमनेनोच्चैः स श्रमं कारितस्तया ॥८॥
 इत्यसौ शिक्षितस्तस्य चक्रेशस्य कुलेशिनः। अङ्गरक्षणसेवायां संस्थितो नवयौवनः ॥९॥
 एकदा चक्रवर्ती च महाटव्यां प्रवेगतः। दुष्टाश्वेन समानीतः क्षुत्पिपासादिपीडितः ॥१०॥
 तत्रासौ वसुदेवेन तेन संशीघ्रगामिना। दत्त्वा भक्ष्यादिकं वस्तु चक्रवर्ती सुखीकृतः ॥११॥
 प्रस्तावे स्तोकमप्युच्चैर्दत्तं शर्मप्रदं भवेत्। क्षीयमाने यथा दीपे तैलं संवर्द्धते शिखा ॥१२॥
 ततो हृष्टेन तैनेव कस्त्वं पृष्टो जगौ च सः। सहस्रभटपुत्रोहं तत्समाकर्ण्य चक्रिणा ॥१३॥
 तस्मै व्याघुटितो दत्त्वा स्वकीयं रत्नकंकणम्। अयोध्यायां समागत्य भणितस्तलरक्षकः ॥१४॥

आदि में आदर-मान की जगह मिल भी नहीं सकती। उसकी इस दशा पर माता को बड़ा दुःख हुआ। पर बेचारी कुछ करने-धरने को लाचार थी। वह अपनी गरीबी के कारण एक पुरानी गिरी-पड़ी झोपड़ी में रहने लगी और जिस किसी प्रकार अपना गुजारा चलाने लगी। उसने भावी आशा से वसुदेव से कुछ काम लेना शुरू किया। वह लड्डू, पेड़ा, पान आदि वस्तुएँ एक खोमचे में रखकर उसे आस-पास के गाँवों में भेजने लगी, इसलिए कि वसुदेव को कुछ परिश्रम करना आ जाए, वह कुछ होशियार हो जाए। ऐसा करने से सुमित्रा को सफलता प्राप्त हुई और वसुदेव कुछ सीख भी गया। उसे पहले की तरह अब निकम्मा बैठे रहना अच्छा न लगने लगा। सुमित्रा ने तब कुछ वसीला लगाकर वसुदेव को राजा का अंगरक्षक नियत करा दिया ॥२-९॥

एक दिन चक्रवर्ती हवा-खोरी के लिए घोड़े पर सवार हो शहर बाहर हुए। जिस घोड़े पर वे बैठे थे वह बड़े दुष्ट स्वभाव को लिए था। सो जरा ही पाँव की एड़ी लगाने पर वह चक्रवर्ती को लेकर हवा हो गया। बड़ी दूर जाकर उसने उन्हें एक बड़ी भयावनी वन में ला गिराया। इस समय चक्रवर्ती बड़े कष्ट में थे। भूख-प्यास से उनके प्राण छटपटा रहे थे। पाठकों को स्मरण है कि इनके अंगरक्षक वासुदेव को उसकी माँ ने चलने-फिरने और दौड़ने-दुड़ाने के काम में अच्छा होशियार कर दिया था। यही कारण था कि जिस समय चक्रवर्ती को घोड़ा लेकर भागा, उस समय वसुदेव भी कुछ खाने-पीने की वस्तुएँ लेकर उनके पीछे-पीछे बेतहाशा भागा गया। चक्रवर्ती को आध-पौन घंटा वन में बैठे हुआ होगा कि इतने में वसुदेव भी उनके पास जा पहुँचा। खाने-पीने की वस्तुएँ उसने महाराज को भेंट की। चक्रवर्ती उससे बहुत सन्तुष्ट हुए। सच है, योग्य समय में थोड़ा भी दिया हुआ सुख का कारण होता है। जैसे बुझते हुए दीप में थोड़ा भी तेल डालने से वह झट से तेज हो उठता है। चक्रवर्ती ने खुश होकर उससे पूछा तू कौन है? उत्तर में वसुदेव ने कहा-महाराज, सहस्रभट सामन्त का मैं पुत्र हूँ, चक्रवर्ती फिर विशेष कुछ पूछताछ करके चलते समय उसे एक रत्नमयी कंकण देते गए ॥१०-१४॥

मदीयं कंकणं नष्टं त्वं गवेषय वेगतः। तच्छ्रुत्वा कोट्टपालश्च द्रुतं शालास्थितं तदा ॥१५॥
 कंकणस्य मुदा वार्त्तां प्रकुर्वन्तं विलोक्य तम्। वसुदेवं समानीय दर्शयामास चक्रिणः ॥१६॥
 तं दृष्ट्वा चक्रभृत्प्राह याचय त्वं स्ववाञ्छितम्। तेनोक्तं देव जानाति माता मे च ततो गृहम् ॥१७॥
 गत्वा तां मातरं पृष्ट्वा सुमित्रां गुणशालिनीम्। पुनश्चागत्य भूपालो वसुदेवेन याचितः ॥१८॥
 दीयते भो महीनाथ युष्माभिः सुविचक्षणैः। प्रमोदजनकं चारु मह्यं चोल्लकभोजनम् ॥१९॥
 ब्रह्मदत्तो नृपः प्राह कीदृशं तच्च भोजनम्। तच्छ्रुत्वा वसुदेवोपि जगाद शृणु भूपते ॥२०॥
 पूर्वं भवद्गृहे देव प्रोल्लसद्गौरवेण च। स्नानभोजनसद्भूषा-मनोवाञ्छितसद्भनम् ॥२१॥
 लब्ध्वा पश्चात्तवप्राण-वल्लभान्तःपुरे तथा। महामुकुटबद्धादि-परिवारगृहेषु च ॥२२॥
 क्रमादेवं परिप्राप्य पुनस्तेन क्रमेण वै। सर्वं सम्प्राप्यते भूप मया श्रीमत्सुवाक्यतः ॥२३॥
 तदाश्चर्यं न भो भव्याः कदाचित्प्राप्यतेऽखिलम्। मनुष्यत्वं पुनर्नष्टं प्राप्यते नैव भूतले ॥२४॥
 संज्ञात्वेति बुधैस्त्यक्त्वा दुर्मार्गं दुःखकारणम्। श्रीमज्जिनेन्द्रसद्भक्तिर्विधेया शर्मकारणम् ॥२५॥

अयोध्या में पहुँचा कर ही उन्होंने कोतवाल से कहा—मेरा कड़ा खो गया है, उसे ढूँढ़कर पता लगाइए। राजाज्ञा पाकर कोतवाल उसे ढूँढ़ने को निकला। रास्ते में एक जगह इसने वसुदेव को कुछ लोगों के साथ कड़े के सम्बन्ध की ही बात-चीत करते पाया। कोतवाल तब उसे पकड़ कर राजा के पास लिवा ले गया। चक्रवर्ती उसे देखकर बोले—मैं तुझ पर बहुत खुश हूँ। तुझे जो चाहिए वही माँग ले। वसुदेव बोला—महाराज, इस विषय में मैं कुछ नहीं जानता कि मैं आपसे क्या माँगूँ। यदि आप आज्ञा करें तो मेरी माँ से पूछ आऊँ। चक्रवर्ती के कहने से वह अपनी माँ के पास गया और उसे पूछ आकर चक्रवर्ती से उसने प्रार्थना की महाराज, आप मुझे चोल्लक भोजन कराइए। उससे मुझे बड़ी प्रसन्नता होगी। तब चक्रवर्ती ने उनसे पूछा—भाई, चोल्लक भोजन किसे कहते हैं? हमने तो उसका नाम भी आज तक नहीं सुना। वसुदेव ने कहा—सुनिए महाराज, पहले तो बड़े आदर के साथ आपके महल में मुझे भोजन कराया जाए और खूब अच्छे-अच्छे सुन्दर कपड़े, गहने-दागीने दिये जायें। इसके बाद उसकी तरह आपकी रानियों के महलों में क्रम-क्रम से मेरा भोजन हो। फिर आपके परिवार तथा मण्डलेश्वर राजाओं के यहाँ मुझे इसी प्रकार भोजन कराया जाए। इतना सब हो चुकने पर क्रम-क्रम से फिर आप ही के यहाँ मेरा अन्तिम भोजन हो। महाराज, मुझे पूर्ण विश्वास है कि आपकी आज्ञा से मुझे यह सब प्राप्त हो सकेगा ॥१५-२३॥

भव्यजनों! इस उदाहरण से यह शिक्षा लेने की है कि यह चोल्लक भोजन वसुदेव सरीखे कंगाल को शायद प्राप्त हो भी जाए तो भी इसमें आश्चर्य करने की कोई बात नहीं, पर एक बार प्रमाद से खो-दिया गया मनुष्य जन्म बेशक अत्यन्त दुर्लभ है। फिर लाख प्रयत्न करने पर भी वह सहसा नहीं मिल सकता। इसलिए बुद्धिमानों को उचित है कि वे दुःख के कारण खोटे मार्ग को छोड़कर जैनधर्म का शरण लें, जो कि मनुष्य जन्म की प्राप्ति और मोक्ष का प्रधान कारण है ॥२४-२५॥

१-इति चोल्लकदृष्टान्तः ।

अथ पाशक दृष्टान्तः कथ्यते मगधाभिधे । देशे पुरे शतद्वारे शतद्वाराख्यभूपतिः ॥२६॥
 तेन द्वारशतं राज्ञा कारितं स्वपुरे परे । एकादश सहस्राणि स्तंभानां द्वारकं प्रति ॥२७॥
 स्तंभे स्तंभे श्रयः प्रोक्तास्तथा षण्णवतिर्बुधैः । एकैकस्यां तथा श्र्यां च द्यूतकारकदम्बकाः ॥२८॥
 पाशकाभ्यां च ते सर्वे रमन्ते द्यूतकारकाः । एकदा शिवशर्माख्यब्राह्मणेन प्रयाचिताः ॥२९॥
 सर्वत्रैको यदा दावः पतत्येव तदा ध्रुवम् । जितं द्रव्यं प्रदातव्यं युष्माभिर्महामित्यलम् ॥३०॥
 एवमस्त्विति तैः प्रोक्ते तस्मिन्नेव दिने तदा । एकदा यश्च सर्वत्र संपपात विधेर्वशात् ॥३१॥
 तत्सर्वं विप्रकः सोपि मुदा द्रव्यं गृहीतवान् । पुनः सोपि तथा द्रव्यं सर्वं प्राप्नोति कर्मतः ॥३२॥
 नैव शीघ्रं मनुष्यत्वं नष्टं सम्प्राप्यते क्षितौ । ज्ञात्वा चित्ते कथाभावं सद्भिः कार्या शुभे मतिः ॥३३॥
 तत्र पुण्यं जिनेन्द्राणां भक्त्या पादद्वयार्चनैः । पात्रदानैर्व्रतैः शीलैः सोपवासैर्मतं बुधैः ॥३४॥

२-इति पाशकदृष्टान्तः ।

धान्यदृष्टान्तकं वक्ष्ये संक्षेपेण सतां हितम् । जम्बूद्वीपप्रमाणं च योजनैकं सहस्रतः ॥३५॥

२. पाशे का दृष्टान्त

मगध देश में शतद्वार नाम का एक अच्छा शहर था उसके राजा का नाम शतद्वार था । शतद्वार ने अपने शहर में एक ऐसा देखने योग्य दरवाजा बनवाया, कि जिसमें ग्यारह हजार खंभे थे । उन एक-एक खम्भे में छियानवे ऐसे स्थान बने हुए थे जिनमें जुआरी लोग पाशे द्वारा सदा जुआ खेला करते थे । एक शिवशर्मा नाम के ब्राह्मण ने उन जुआरियों से प्रार्थना की-भाइयों, मैं बहुत ही गरीब हूँ, इसलिए यदि आप मेरा इतना उपकार करें, कि आप सब खेलने वालों का दाव यदि किसी समय एक ही सा पड़ जाए और वह सब धन-माल आप मुझे दे दें, तो बहुत अच्छा हो । जुआरियों ने शिवशर्मा की प्रार्थना स्वीकार कर ली । इसलिए कि उन्हें विश्वास था कि ऐसा होना नितान्त ही कठिन है, बल्कि असंभव है । पर दैवयोग ऐसा हुआ कि एक बार सबका दाव एक ही सा पड़ गया और उन्हें अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार सब धन शिवशर्मा को दे देना पड़ा । वह उस धन को पाकर बहुत खुश हुए । इस दृष्टान्त से यह शिक्षा लेनी चाहिए कि जैसा योग शिवशर्मा को मिला था, वैसा योग मिलकर और कर्मयोग से इतना धन भी प्राप्त हो जाए तो कोई बात नहीं, परन्तु जो मनुष्य-जन्म एक बार प्रमाद वश हो नष्ट कर दिया जाए तो वह फिर सहज में नहीं मिल सकता । इसलिए सत्पुरुषों को निरन्तर ऐसे पवित्र कार्य करते रहना चाहिए, जो मनुष्य-जन्म या स्वर्ग-मोक्ष के प्राप्त कराने वाले हैं ऐसे कर्म हैं-जिनेन्द्र भगवान् की पूजा करना, दान देना, परोपकार करना, व्रतों का पालना, ब्रह्मचर्य से रहना और उपवास करना आदि ॥२६-३४॥

३. धान्य दृष्टान्त

जम्बूद्वीप के बराबर चौड़ा और एक हजार योजन अर्थात् दो हजार कोस या चार कोस गहरा

गंभीरा सर्षपैर्गता पूरिता सा दिने दिने। एकैकसर्षपेणोच्चैः क्षीयते कालयोगतः ॥३६॥
 नष्टं नैव मनुष्यत्वं प्राप्यते चाल्पपुण्यकैः। तस्मात्पुण्यं जिनेन्द्रोक्तं संश्रयन्तु बुधोत्तमाः ॥३७॥
 तथान्यो धान्यदृष्टान्तो विनीतविषये शुभे। अयोध्यापत्तने राजा प्रजापालाभिधानभाक् ॥३८॥
 राजगृहात्तथा शत्रुर्जितशत्रुर्महीपतिः। अयोध्यापुरमुद्दिश्य गृहीतुं संचाल च ॥३९॥
 तत्समाकर्ण्य भूपालः प्रजापालः प्रजां प्रतिः। जगौ सर्वजनैः सर्वधान्यमेकत्र मिश्रितम् ॥४०॥
 संख्यां कृत्वा समानीय कोष्ठागारे मम द्रुतम्। रक्षणीयं प्रयत्नेन तैर्जनैस्तु तथा कृतम् ॥४१॥
 ततस्तस्मिन्समागत्य जितशत्रौ मदोद्धते। असमर्थत्वमासाद्य पश्चाद्व्याघुटिते सति ॥४२॥
 प्रजालोकैर्निजं धान्यं याचितः स महीपतिः। प्रजापालस्ततः प्राह परिज्ञाय निजं निजम् ॥४३॥
 युष्माभिर्गृह्यते धान्यं राजानो विकटाशया। क्वचित्तत्संभवत्येव केनोपायेन पुण्यतः ॥४४॥
 न नष्टं प्राप्यते शीघ्रं मनुष्यत्वं सुदुर्लभम्। मत्वेति परमप्रीत्या सन्तः कुर्वन्तु सच्छुभम् ॥४५॥

३-इति धान्यदृष्टान्तः।

एक बड़ा भारी गड्डा खोदा जाकर वह सरसों से भर दिया जाये ॥३५॥

उसमें से फिर रोज-रोज एक-एक सरसों निकाली जाया करे। ऐसा निरन्तर करते रहने से एक दिन ऐसा भी आयेगा कि जिस दिन वह कुण्ड सरसों से खाली हो जायेगा। पर यदि प्रमाद से यह जन्म नष्ट हो गया तो वह समय फिर आना एक तरह असम्भव ही हो जायेगा, जिनमें कि मनुष्य-जन्म मिल सके। इसलिए बुद्धिमानों को उचित है कि वे प्राप्त हुए मनुष्य जन्म को निष्फल न खोकर जिनपूजा, व्रत, दान, परोपकारादि पवित्र कामों में लगावें, क्योंकि ये सब परम्परा मोक्ष के साधन हैं ॥३६-३७॥

धान्य का दूसरा दृष्टान्त

अयोध्या के राजा प्रजापाल पर राजगृह के जितशत्रु राजा ने एक बार चढ़ाई की और सारी अयोध्या को सब ओर से घेर लिया। तब राजा ने अपनी प्रजा से कहा-जिसके यहाँ धान के जितने बोरे हों, उन सब बोरों को लाकर और गिनती करके मेरे कोठों में सुरक्षित रख दें। मेरी इच्छा है कि शत्रु को एक अन्न का दाना भी यहाँ से प्राप्त न हो। ऐसी हालत में उसे झखमार कर लौट जाना पड़ेगा। सारी प्रजा ने राजा की आज्ञानुसार ऐसा ही किया। जब अभिमानी शत्रु को अयोध्या से अन्न न मिला तब थोड़े ही दिनों में उसकी अकल ठिकाने पर आ गई। उसकी सेना भूख के मारे मरने लगी। आखिर जितशत्रु को लौट जाना ही पड़ा। जब शत्रु अयोध्या का घेरा उठा चल दिया तब प्रजा ने राजा से अपने-अपने धान के ले-जाने की प्रार्थना की। राजा ने कह दिया कि हाँ अपना-अपना धान पहचान कर सब लोग ले जायें। कभी कर्मयोग से ऐसा हो जाना भी सम्भव है, पर यदि मनुष्य जन्म एक बार व्यर्थ नष्ट हो गया तो उसका पुनः मिलना अत्यन्त ही कठिन है। इसलिए इसे व्यर्थ खोना उचित नहीं। इसे तो सदा शुभ कामों में ही लगाये रहना चाहिए ॥३८-४५॥

द्यूतदृष्टान्तमावचमि शतद्वारपुरे तथा। द्वाराः पञ्चशतान्येव द्वारे द्वारे मनोहरे ॥४६॥
 शालाः पञ्चशतान्युच्चैः शालां शालां प्रति ध्रुवम्। द्यूतकारसहस्राद्धं सम्प्रोक्त सुविचक्षणैः ॥४७॥
 एकस्तत्र चयीनामा द्यूतकारः प्रवर्तते। द्यूतकाराश्च ते सर्वे जित्वा सर्वकपर्दकान् ॥४८॥
 गताः सर्वदिशास्वाशु स्वेच्छया स चयी पुनः। तेषां च द्यूतकाराणां कदाचित्कर्मयोगतः ॥४९॥
 मेलापकं करोत्येव न पुनर्नष्टतामितम्। प्राप्यते सुमनुष्यत्वं जन्तुभिस्तुच्छपुण्यकैः ॥५०॥
 अन्यस्मिन्द्यूतदृष्टान्ते तस्मिन्नेव पुरेऽभवत्। नाम्ना निर्लक्षणो द्यूतकारः स्वप्नेऽपि पापतः ॥५१॥
 संप्राप्नोति जयं नैव कदाचिच्छुभयोगतः। जित्वा कपर्दकान्सर्वान्ददौ कार्पटिकादिषु ॥५२॥
 ते सर्वे तान्समादाय प्राप्ताः सर्वदिशासुखम्। कदाचित्कर्मयोगेन सर्वे कार्पटिकादयः ॥५३॥
 भवन्त्येकत्र नैवात्र नृत्वं सम्प्राप्यते गतम्। कर्त्तव्या च ततो भव्यैर्धर्मसेवा शुभश्रिये ॥५४॥

४-इति द्यूतदृष्टान्तः।

रत्नदृष्टान्तमावचमि सतां सम्बोधहेतवे। श्रीमद्भरतचक्रेशो द्वितीयः सगरो महान् ॥५५॥
 तृतीयो मघवा चक्री तुर्यः सनत्कुमारवाक्। शान्तिनाथस्तथा कुन्थुरश्चक्री च सप्तमः ॥५६॥
 सुभौमाख्यो महापद्मो हरिषेणो गुणोज्ज्वलः। चक्री श्रीजयसेनाख्यो ब्रह्मदत्तोन्तिमो मतः ॥५७॥

४. जुआ का दृष्टान्त

शतद्वारपुर में पाँच सौ सुन्दर दरवाजे हैं। उन एक-एक दरवाजों में जुआ खेलने के पाँच-पाँच सौ अड्डे हैं, उन एक-एक अड्डों में पाँच-पाँच सौ जुआरी लोग जुआ खेलते हैं। उनमें एक चयी नाम का जुआरी है। ये सब जुआरी कौड़ियाँ जीत-जीत कर अपने-अपने गाँवों में चले गए। चयी वहीं रहा। भाग्य से इन सब जुआरियों का और इस चयी का फिर भी कभी मुकाबला होना सम्भव है, पर नष्ट हुए मनुष्य-जन्म का पुण्यहीन पुरुषों को फिर सहसा मिलना दरअसल कठिन है ॥४६-५०॥

जुआ का दूसरा दृष्टान्त

इसी शतद्वारपुर में निर्लक्षण नाम का एक जुआरी था। उसके इतना भारी पापकर्म का उदय था कि वह स्वप्न में भी कभी जीत नहीं पाता था। एक दिन कर्मयोग से वह भी खूब धन जीता। जीतकर उस धन को उसने याचकों को बाँट दिया। वे सब धन लेकर चारों दिशाओं में जिसे जिधर जाना था उधर चले गए। वे सब लोग दैवयोग से फिर भी कभी इकट्ठे हो सकते हैं, पर गया जन्म फिर हाथ आना दुष्कर है। इसलिए जब तक मोक्ष न मिले तब तक यह मनुष्य-जन्म प्राप्त होता रहे, इसके लिए धर्म की शरण सदा लिए रहना चाहिए ॥५१-५४॥

५. रत्न-दृष्टान्त

भरत, सगर, मघवा, सनत्कुमार, शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ, अरनाथ, सुभौम, महापद्म, हरिषेण, जयसेन और ब्रह्मदत्त ये बारह चक्रवर्ती इनके मुकुटों में जड़े हुए मणि, जिन्हें स्वर्गों के देव ले गए हैं और वे चौदह रत्न, नौ निधि तथा सब देव, ये सब कभी इकट्ठे नहीं हो सकते; इसी तरह खोया

एतेषां चक्रिणां चारु-चूडामणिसमूहकः। देवैः सर्वो गृहीतस्तु यथा ते चक्रवर्त्तिनः ॥५८॥
प्रोल्लसन्मणयस्तेऽपि पृथ्वीकायाश्च ते क्षितौ। तेऽपि देवा कदाप्यत्र मिलन्त्येकत्र नैव च ॥५९॥
तथा नष्टं मनुष्यत्वं विपुण्यैः प्राप्यते न हि। संविचार्य बुधैस्तस्माद्विधेयो जैनसद्वृषः ॥६०॥

५-इति रत्नदृष्टान्तः।

तथा स्वप्नप्रदृष्टान्तो-वन्तिदेशे मनोहरे। उज्जयिन्यां महापुर्यां हल्लाख्यः काचवाहकः ॥६१॥
तदा काष्ठान्यटव्यास्तु समानयति सोन्यदा। उद्याने काष्ठभारं च धृत्वा भूरिश्रमाश्रितः ॥६२॥
सुप्तः स्वप्नेऽभवत्सर्वभूमिचक्राधिपो महान्। भार्ययोत्थापितः पश्चाद्वाहति स्म स्वभारकम् ॥६३॥
यथा स्वप्नोत्थितः सोपि नैव चक्री कदाचन। तथा नष्टं मनुष्यत्वं प्राप्यते न विपुण्यकैः ॥६४॥

६-इति स्वप्नदृष्टान्तः।

वक्ष्येहं चक्रदृष्टान्तं दृढाः स्तंभा द्वाविंशति। स्तंभे स्तंभेभवच्चक्रं चक्रे चक्रे बुधैर्मतम् ॥६५॥
आराणां च सहस्रं स्यादारे चारे प्ररन्ध्रकम्। चक्राणां विपरीतत्वाद्भ्रमणे सुभटैस्तदा ॥६६॥

हुआ मनुष्य जीवन पुण्यहीन पुरुष कभी प्राप्त नहीं कर सकते। यह जानकर बुद्धिमानों को उचित है, उनका कर्तव्य है कि वे मनुष्य जीवन प्राप्त करने के कारण जैनधर्म को ग्रहण करें ॥५५-६०॥

६. स्वप्न-दृष्टान्त

उज्जैन में एक लकड़हारा रहता था। वह जंगल में से लकड़ी काट कर लाता और बाजार में बेच दिया करता था। उसी से उसका गुजारा चलता था। एक दिन वह लकड़ी का गट्टा सिर पर लादे आ रहा था। ऊपर से बहुत गरमी पड़ रही थी। सो वह एक वृक्ष की छाया में सिर पर का गट्टा उतार कर वहीं सो गया। ठंडी हवा बह रही थी। सो उसे नींद आ गई। उसने एक सपना देखा कि वह सारी पृथ्वी का मालिक चक्रवर्ती हो गया। हजारों नौकर-चाकर उसके सामने हाथ जोड़े खड़े हैं। जो वह आज्ञा-हुक्म करता है वह सब उसी समय बजाया जाता है। यह सब कुछ हो रहा था इतने में उसकी स्त्री ने आकर उसे उठा दिया। बेचारे की सब सपने की सम्पत्ति आँख खोलते ही नष्ट हो गई उसे फिर वही लकड़ी का गट्टा सिर पर लादना पड़ा। जिस तरह वह लकड़हारा स्वप्न में चक्रवर्ती बन गया, पर जगने पर रहा लकड़हारा का लकड़हारा ही। उसके हाथ कुछ भी धन-दौलत न लगी। ठीक इसी तरह जिसने एक बार मनुष्य जन्म प्राप्त कर व्यर्थ गँवा दिया उस पुण्यहीन मनुष्य के लिए फिर वह मनुष्य-जन्म जागृतदशा में लकड़हारे को न मिलने वाली चक्रवर्ती की सम्पत्ति की तरह असम्भव है ॥६१-६४॥

७. चक्र-दृष्टान्त

अब चक्र-दृष्टान्त कहा जाता है। बाईस मजबूत खम्भे हैं। एक-एक खम्भे पर एक-एक चक्र लगा हुआ है, एक-एक चक्र में हजार-हजार आरे हैं उन आरों में एक-एक छेद है। चक्र सब उल्टे घूम रहे हैं। पर जो वीर पुरुष हैं वे ऐसी हालत में भी उन खम्भों पर की राधा को वेध देते हैं। काकन्दी के राजा द्रुपद की कुमारी का नाम द्रौपदी था। वह बड़ी सुन्दरी थी। उसके स्वयंवर में अर्जुन ने ऐसी

स्तंभानामुपरिस्था च राधा संविध्यते शुभात्। काकन्दीपत्तने राजाभवद्रुपदनामकः ॥६७॥
तत्पुत्रीं द्रौपदीनाम्नीं रूपसौभाग्यशालिनीम्। अर्जुनेन महीभर्त्रा स्वयंवरविधौ मुदा ॥६८॥
राधावेधं विधायोच्चैर्गृहीता द्रौपदी सती। पुण्योदयेन जन्तूनां किं न स्याच्छर्मनिर्मलम् ॥६९॥
तदुच्चैर्घटते सर्वं नैव नष्टा नृजन्मता। विना प्रव्यक्तपुण्येन तस्मात्तत्क्रियते बुधैः ॥७०॥

७-इति चक्रदृष्टान्तः।

कूर्मदृष्टान्तकं प्राहुर्भव्यानां पूर्वसूरयः। स्वयंभूरमणे ख्याते समुद्रे सुमहत्यपि ॥७१॥
छादिते चर्मणा तस्मिन्कूर्मो जन्तुर्महानभूत्। परिभ्रमज्जले तत्र सोपि वर्षसहस्रकम् ॥७२॥
सूक्ष्मचर्मप्ररन्ध्रेण सूर्यं दृष्ट्वा कदाचन। पश्चादागत्य तं सूर्यं तस्मिन्नेव प्ररन्ध्रके ॥७३॥
दर्शयन्स्वकुटुम्बस्य स्वयं पश्यति भास्करम्। प्राप्यते न मनुष्यत्वं यत्प्रमादेन हारितम् ॥७४॥

८-इति कूर्मदृष्टान्तः।

शृण्वन्तु युगदृष्टान्तं सज्जनाश्चारुचेतसः। प्रमाणं योजनानां हि लक्षद्वयसमायते ॥७५॥
पूर्वक्षारसमुद्रे च युगच्छिद्राद्विनिर्गता। कदाचित्समिला तत्र पतिता काष्ठनिर्मिता ॥७६॥
तथा पश्चिमवार्ताशौ युगं भ्रमति नित्यशः। तस्मिन्नेव युगच्छिद्रे कथंचित्कालयोगतः ॥७७॥
याति सा समिला चापि नैव नष्टं नृजन्म वै। प्राप्यते वेगतो भव्या-स्ततः कुर्वन्तु सच्छुभम् ॥७८॥

ही राधा वेध कर द्रौपदी को ब्याहा था। सो ठीक ही है पुण्य के उदय से प्राणियों को सब कुछ प्राप्त हो सकता है। यह सब योग कठिन होने पर भी मिल सकता है, पर यदि प्रमाद से मनुष्य जन्म एक बार नष्ट कर दिया जाए तो उसका मिलना बेशक कठिन ही नहीं किन्तु असम्भव है। वह प्राप्त होता है पुण्य से, इसलिए पुण्य के प्राप्त करने का यत्न करना अत्यन्त आवश्यक है ॥६५-७०॥

८. कछुए का दृष्टान्त

सबसे बड़े स्वयंभूरमण समुद्र को एक बड़े भारी चमड़े में छोटा-सा छेद करके उससे ढक दीजिए। समुद्र में घूमते हुए एक कछुए ने कोई एक हजार वर्ष बाद उस चमड़े के छोटे से छेद में से सूर्य को देखा। वह छेद उससे फिर छूट गया। भाग्य से यदि फिर कभी ऐसा ही योग मिल जाए कि वह उस छिद्र पर फिर भी आ पहुँचे और सूर्य को देख ले, पर यदि मनुष्य-जन्म इसी तरह प्रमाद से नष्ट हो गया तो सचमुच ही उसका मिलना बहुत कठिन है ॥७१-७४॥

९. युग का दृष्टान्त

दो लाख योजन चौड़े पूर्व के लवणसमुद्र में युग (धुरा) के छेद से गिरी हुई समिलाका पश्चिम समुद्र में बहते हुए युग (धुरा) के छेद में समय पाकर प्रवेश कर जाना सम्भव है, पर प्रमाद या विषयभोगों द्वारा गँवाया हुआ मनुष्य जीवन पुण्यहीन पुरुषों के लिए फिर सहसा मिलना असम्भव है। इसलिए जिन्हें दुःखों से छूटकर मोक्ष सुख प्राप्त करना है उन्हें तब तक ऐसे पुण्यकर्म करते रहना चाहिए कि जिनसे मोक्ष होने तक बराबर मनुष्य जीवन मिलता रहे ॥७५-७८॥

९-इति युगदृष्टान्तः ।

परमाणुप्रदृष्टान्तः कथ्यते दशमो मया । सर्व-चक्रेशिनां दण्डरत्नं हस्तचतुष्टयम् ॥७९॥
काले तस्य प्रदण्डस्य सर्वत्र परमाणवः । रूपान्तरं परिप्राप्य कदाचिच्च पुनस्तथा ॥८०॥
दण्डरत्नत्वमायान्ति नृत्वं न प्राप्यते गतम् । ज्ञात्वेति पण्डितैः कार्यं शर्मकोटि प्रदं शुभम् ॥८१॥

१०-इति परमाणुदृष्टान्तः ।

भयशतैरिह दुर्लभतामितं परमसारं नृजन्म जगद्धितम् ।
बुधजनाः सुविचार्य शुभश्रिये जिनवृषं प्रभजन्तु जगद्धितम् ॥८२॥
इति कथाकोशे मनुष्यभवदुर्लभत्ववर्णने दश दृष्टान्ताः समाप्ताः ।

१०१. भावानुरागरक्ताख्यानम्

जिनपादद्वयं नत्वा सर्वसौख्यप्रदायकम् । भावानुरागरक्तस्य प्रवक्ष्येहं कथानकम् ॥१॥
अवन्तिविषये चारुज्जयिन्यां भूपतिर्महान् । धर्मपालः प्रिया तस्य धर्मश्रीर्धर्मवत्सल ॥२॥
श्रेष्ठी सागरदत्ताख्यः सुभद्रा श्रेष्ठिनी तयोः । नागदत्तोभवत्पुत्रो जिनपादाब्जषट्पदः ॥३॥
तथा समुद्रदत्तस्य श्रेष्ठिनो रूपमण्डिता । पुत्री समुद्रदत्तायां प्रियंगुश्रीर्बभूव हि ॥४॥

१०. परमाणु दृष्टान्त

चार हाथ लम्बे चक्रवर्ती के दण्डरत्न के परमाणु बिखर कर दूसरी अवस्था को प्राप्त कर लें और फिर वे ही परमाणु दैवयोग से फिर कभी दण्डरत्न के रूप में आ जाएँ तो असम्भव नहीं, पर मनुष्य पर्याय यदि एक बार दुष्कर्मों द्वारा व्यर्थ खो दिया तो इसका फिर उन अभागों जीवों को प्राप्त हो जाना जरूर असम्भव है । इसलिए पण्डितों को मनुष्य पर्याय की प्राप्ति के लिए पुण्यकर्म करना कर्तव्य है ॥७९-८१॥

इस प्रकार सर्वश्रेष्ठ मनुष्य जीवन को अत्यन्त दुर्लभ समझ कर बुद्धिमानों को उचित है कि वे मोक्ष सुख के लिए संसार के जीवमात्र के हित करने वाले पवित्र जैनधर्म को ग्रहण करें ॥८२॥

१०१. भावानुराग-कथा

सब प्रकार सुख के देने वाले जिनभगवान् को नमस्कार कर धर्म में प्रेम करने वाले नागदत्त की कथा लिखी जाती है ॥१॥

उज्जैन के राजा धर्मपाल थे । उनकी रानी का नाम धर्मश्री था । धर्मश्री धर्मात्मा और बड़ी उदार प्रकृति की स्त्री थी । यहाँ एक सागरदत्त नाम का सेठ रहता था । इसकी स्त्री का नाम सुभद्रा था । सुभद्रा के नागदत्त नाम का एक लड़का था । नागदत्त भी अपनी माता की तरह धर्मप्रेमी था । धर्म पर उसकी अचल श्रद्धा थी । इसका ब्याह समुद्रदत्त सेठ की सुन्दर कन्या प्रियंगुश्री के साथ बड़े ठाटबाट से हुआ । ब्याह में खूब दान दिया गया । पूजा उत्सव किया गया । दीन-दुःखियों की अच्छी सहायता की गई ।